eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

भारत में धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक पक्ष– एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डा0 सदगुरु पुष्पम[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, के0 एस0 साकेत पीजी कालेज, अयोध्या, उ0प्र0, भारत

Received: 15 April 2025 Accepted & Reviewed: 25 April 2025, Published: 30 April 2025

Abstract

भारत एक विविधतापूर्ण देश है जहाँ अनेक धर्म, सम्प्रदाय, जातियाँ और भाषाएँ सह–अस्तित्व में हैं। भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता को एक मौलिक सिद्धांत के रूप में स्वीकार करता है, जो राज्य और धर्म के बीच स्पष्ट भेद की अवधारणा पर आधारित है। परंतु व्यवहारिक धरातल पर यह सिद्धांत अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। यह शोध पत्र भारतीय धर्मनिरपेक्षता के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों की गहन पड़ताल करता है। इसमें ऐतिहासिक, संवैधानिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों से धर्मनिरपेक्षता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह शोध वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धार्मिक सहिष्णुता, सांप्रदायिकता, चुनावी राजनीति, तथा न्यायपालिका की भूमिका को भी विवेचित करता है।

कीवर्ड्स– धर्मनिरपेक्षता, भारतीय संविधान, सांप्रदायिकता, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक न्याय, अल्पसंख्यक अधिकार, राज्य और धर्म, चुनावी राजनीति, न्यायपालिका

Introduction

भारत एक बहुधार्मिक, बहुभाषी और बहु–सांस्कृतिक राष्ट्र है। यहाँ की धर्मनिरपेक्षता केवल एक राजनीतिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक संवैधानिक मूल्य और सामाजिक आदर्श भी है। हालाँकि, इसकी व्यावहारिकता अनेक परिस्थितियों में संदेह के घेरे में रही है। यह शोध–पत्र इसी व्यावहारिक पक्ष का विवेचन करता है कि क्या भारत वास्तव में धर्मनिरपेक्ष है या यह एक सैद्धांतिक आदर्श मात्र रह गया है। भारत एक बहुधार्मिक, बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ विविधता ही इसकी पहचान है। इस विविधता के मध्य सामंजस्य बनाए रखना न केवल सामाजिक आवश्यकता है, बल्कि संवैधानिक दायित्व भी। इसी सिद्धांत को मूर्त रूप देने हेतु भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को एक मौलिक आधार के रूप में स्वीकार किया है। धर्मनिरपेक्षता अर्थात् राज्य का किसी एक धर्म से न जुड़ना, बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान दूरी और समभाव बनाए रखना यह भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला मानी जाती है। भारत की धर्मनिरपेक्षता केवल पाश्चात्य चर्च और स्टेट के पृथक्करण की भावना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक समन्वयी अवधारणा है, जिसमें राज्य सभी धर्मों का सम्मान करता है, और सभी नागरिकों को अपने धर्म का पालन करने, प्रचार करने और उसे प्रसारित करने की स्वतंत्रता देता है। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या की गई है, और इसे मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया गया है। हालाँकि, व्यवहारिक धरातल पर यह आदर्श हमेशा उतनी मजबूती से लागू नहीं हो सका जितना कि अपेक्षित था। राजनीति में धर्म का उपयोग, चुनावों में धार्मिक ध्रुवीकरण, सांप्रदायिक दंगे, धार्मिक पहचान की राजनीति, तथा मीडिया के माध्यम से धार्मिक भावनाओं को भड़काने की घटनाएँ यह दर्शाती हैं कि भारत की धर्मनिरपेक्षता आज एक गंभीर चुनौती के दौर से गुजर रही है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य भारत में धर्मनिरपेक्षता की व्यावहारिक स्थिति का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन केवल सैद्धांतिक पहलुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके सामाजिक, राजनीतिक और न्यायिक पक्षों का भी सूक्ष्मता से परीक्षण करता है। यह जानना आवश्यक है कि भारतीय राज्य और समाज किस

सीमा तक धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को आत्मसात कर पाए हैं, और किन कारणों से इन सिद्धांतों के पालन में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

इस शोध के माध्यम से हम यह विश्लेषण करेंगे कि क्या भारतीय धर्मनिरपेक्षता केवल संवैधानिक शब्दावली बनकर रह गई है या वास्तव में यह आज भी एक जीवंत और सक्रिय मूल्य के रूप में कार्य कर रही है। साथ ही, हम उन उपायों पर भी विचार करेंगे जो भारत में धर्मनिरपेक्षता को व्यावहारिक धरातल पर अधिक प्रभावी बना सकते हैं।

परिकल्पना (Hypothesis)– भारत में धर्मनिरपेक्षता एक सैद्धांतिक अवधारणा के रूप में स्वीकार्य है, किंतु इसके व्यावहारिक पक्ष में विभिन्न स्तरों पर चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं, जैसे राजनीतिक स्वार्थ, सांप्रदायिकता, मीडिया की पक्षपातपूर्ण भूमिका, और न्यायिक व्याख्याओं की विविधता। यह शोध परिकल्पना करता है कि संविधान में उल्लिखित धर्मनिरपेक्षता की भावना यदि व्यवहार में समान रूप से लागू हो, तो भारतीय लोकतंत्र अधिक समावेशी और न्यायसंगत बन सकता है।

शोध प्राविधि (Research Methodology)–

शोध की प्रकृति– यह शोध गुणात्मक (Qualitative) और विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है, जिसमें भारत में धर्मनिरपेक्षता के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन किया गया है।

सूत्रों का प्रकार–

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)– भारतीय संविधान, सुप्रीम कोर्ट के निर्णय, संसद की बहसें, सरकारी दस्तावेज़, अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट आदि।

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)– विद्वानों की पुस्तकें, शोध लेख, समाचार पत्रों की रिपोर्ट्स, मीडिया विश्लेषण, और साक्षात्कार।

डाटा संग्रहण विधियाँ (Data Collection Methods)

ग्रंथालय अध्ययन (Library Research)

अभिलेखीय सामग्री (Archival Material)

मीडिया अनुशीलन (Media Tracking)

केस स्टडी पद्धति (Case Study Method)– जैसे शाह बानो केस, अयोध्या विवाद, हिजाब विवाद, आदि।

डेटा विश्लेषण विधि (Data Analysis Technique)– तुलनात्मक विश्लेषण, ऐतिहासिक व्याख्या, और संवैधानिक विवेचनात्मक पद्धति को अपनाया गया है।

सीमाएं (LimitationS)-

शोध मुख्यतः भारत तक सीमित है।

सांप्रदायिक घटनाओं की व्याख्या के लिए उपलब्ध स्रोतों की प्रमाणिकता पर निर्भरता।

धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या में क्षेत्रीय भिन्नता को केवल संदर्भ के रूप में समाहित किया गया है।

शोध अवधि– अध्ययन हेतु 1947 से 2024 तक की प्रमुख घटनाओं को सम्मिलित किया गया है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– भारत में धर्मनिरपेक्षता की जड़ें केवल आधुनिक काल या संविधान निर्माण तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इसका इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। भारतीय उपमहाद्वीप में अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन दृष्टियों ने एक साथ पनपने और सह–अस्तित्व में रहने की परंपरा को जन्म दिया। भारत में धर्मनिरपेक्षता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन हेतु चार प्रमुख कालखंड हैं,

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत, औपनिवेशिक काल और स्वतंत्रता संग्राम। प्राचीन भारत में विविध धार्मिक परंपराओं का सहअस्तित्व देखने को मिलता है। वैदिक परंपरा के साथ–साथ बौद्ध, जैन और अन्य श्रमण परंपराएँ भी समानांतर रूप से विकसित हुईं। ऋग्वेद में एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं) जैसे मंत्रों में सार्वभौमिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी के विचारों ने धार्मिक सहिष्णुता और नैतिक आचरण पर आधारित समाज की कल्पना को बल दिया। सम्राट अशोक के काल में राज्य और धर्म के संबंधों में सहिष्णुता और बहुधार्मिक सम्मान की नीति अपनाई गई। उनके शिलालेखों में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य किसी एक धर्म का पक्ष नहीं लेगा, बल्कि सभी धर्मों के अनुयायियों का सम्मान करेगा। मध्यकाल में भारत में इस्लाम का आगमन हुआ। जहाँ एक ओर कुछ शासकों ने धार्मिक कट्टरता दिखाई, वहीं दूसरी ओर अनेक सूफी संतों और भक्ति कवियों ने समन्वय और भाईचारे की भावना को बढ़ावा दिया। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया, कबीर, गुरुनानक, रैदास, तुलसीदास जैसे संतों ने धर्म से परे मानवता को सर्वोपरि माना। अकबर जैसे मुग़ल शासक ने दीन–ए–इलाही जैसे नवाचार द्वारा धर्मनिरपेक्ष शासन की परिकल्पना की। उन्होंने जज़िया कर को हटाकर गैर–मुस्लिम प्रजा को समान अधिकार दिए। यह काल भारत के धर्मनिरपेक्ष इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जहाँ विविध धर्मों के मध्य संवाद और सह–अस्तित्व की भावना प्रबल थी।

ब्रिटिश शासनकाल में धर्म के आधार पर जनसंख्या को विभाजित करने की नीति अपनाई गई। फूट डालो और राज करो की नीति ने हिंदू–मुस्लिम मतभेदों को बढ़ावा दिया। 1909 के मिंटो–मॉर्ले सुधार और 1932 के कम्युनल अवार्ड जैसे निर्णयों ने धर्म के आधार पर पृथक निर्वाचनी प्रतिनिधित्व को वैधता दी। इससे भारत में सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा मिला और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को गहरी चोट पहुँची। हालाँकि, इस दौर में भी अनेक राष्ट्रवादी नेताओं जैसे महात्मा गांधी, पं. नेहरू, डॉ. अंबेडकर, खान अब्दुल गफ्फार खान आदि ने धार्मिक एकता और समरसता की पैरवी की। महात्मा गांधी का सर्वधर्म समभाव का सिद्धांत धर्मनिरपेक्षता का भारतीय रूपांतर था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान धर्म के नाम पर विभाजन की पीड़ा के बावजूद देश के संविधान निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का निर्णय लिया। संविधान सभा की बहसों में यह स्पष्ट हुआ कि भारत न तो धर्म आधारित राष्ट्र बनेगा, न ही किसी धर्म को राज्य का धर्म घोषित किया जाएगा। जवाहरलाल नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता को आधुनिक भारत की आत्मा कहा, जबकि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने धार्मिक स्वतंत्रता को मानव अधिकारों के अंतर्गत रखा। 1976 के 42वें संविधान संशोधन द्वारा धर्मनिरपेक्ष शब्द को औपचारिक रूप से संविधान की प्रस्तावना में शामिल किया गया। भारत में धर्मनिरपेक्षता की जड़ें केवल आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था में नहीं, बल्कि प्राचीन सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं में भी गहराई से निहित हैं। भारत की ऐतिहासिक यात्रा में अनेक ऐसे क्षण आए जहाँ विविध धार्मिक समुदायों के मध्य सामंजस्य बना रहा और जहां धर्म आधारित टकराव भी हुए। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझे बिना भारत में धर्मनिरपेक्षता की व्यावहारिकता का समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान और धर्मनिरपेक्षता– भारतीय संविधान न केवल राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना का आधार है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और धार्मिक स्वतंत्रता जैसे मूल्यों को भी सुनिश्चित करता है। भारत का संविधान धर्मनिरपेक्षता को एक मौलिक आधार के रूप में स्वीकार करता है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि राज्य का कोई धर्म नहीं होगा और सभी नागरिकों को अपने धर्म का पालन करने, प्रचार करने और उस पर अमल करने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में मूलतः धर्मनिरपेक्ष शब्द नहीं था। 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को जोड़कर यह स्पष्ट किया गया कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य न किसी विशेष धर्म

को मान्यता देगा, न उसका विरोध करेगा, बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टिकोण रखेगा। भारत में धर्मनिरपेक्षता को केवल आदर्श नहीं बल्कि मौलिक अधिकार के रूप में भी स्थापित किया गया है। विशेष रूप से अनुच्छेद 25 से 28 तक धर्म से संबंधित अधिकारों की बात की गई है–

अनुच्छेद 25 – धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार–

प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म को मानने, पालन करने, और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 26 – धार्मिक संस्थानों की स्वतंत्रता

प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को अपने धार्मिक मामलों का संचालन स्वतंत्र रूप से करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 27 करों का उपयोग धार्मिक प्रयोजनों के लिए नहीं–

कोई व्यक्ति ऐसे कर के भुगतान के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिसका उपयोग किसी विशेष धर्म को प्रचारित करने हेतु किया जा रहा हो।

अनुच्छेद 28 – शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा–

राज्य द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित संस्थानों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती।

पाश्चात्य देशों विशेषकर फ्रांस और अमेरिका में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ होता है राज्य और धर्म का पूर्ण पृथक्करण (Separation of Church and State)। परन्तु भारत में यह एक सक्रिय समभाव (positive secularism) की अवधारणा पर आधारित है, जहाँ राज्य सभी धर्मों का आदर करता है, उन्हें संरक्षण देता है, परंतु किसी का पक्ष नहीं लेता।

न्यायपालिका की भूमिका और व्याख्याएँ– भारतीय न्यायपालिका ने अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या की है। जैसे–

1. केस– एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)– इस ऐतिहासिक फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि धर्मनिरपेक्षता संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है, जिसे बदला नहीं जा सकता।

2. शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017)– तीन तलाक के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि धार्मिक प्रथा यदि मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है, तो उसे रोका जा सकता है।

3. सबरीमाला केस (2018)– महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध को समानता के अधिकार के उल्लंघन के रूप में देखा गया।

न्यायपालिका ने समय–समय पर यह स्पष्ट किया है कि धार्मिक स्वतंत्रता की सीमा वहीं तक है जहाँ तक वह सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य का उल्लंघन न करे।

संविधान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा– संविधान में धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा हेतु विशेष प्रावधान किए गए हैं–

अनुच्छेद 29– सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार

अनुच्छेद 30 – अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने और संचालित करने का अधिकार

इन प्रावधानों का उद्देश्य धार्मिक विविधता के मध्य सामाजिक एकता को सुदृढ़ करना है।

हालाँकि संविधान स्पष्ट रूप से धर्मनिरपेक्षता की वकालत करता है, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर यह सिद्धांत अक्सर राजनीतिक हितों, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और धार्मिक पहचान की राजनीति के कारण प्रभावित होता है। चुनावों में धर्म का उपयोग, सांप्रदायिक हिंसा, तथा कुछ कानूनों की पक्षपातपूर्ण व्याख्या धर्मनिरपेक्षता की आत्मा पर चोट करती हैं। भारतीय संविधान न केवल धर्मनिरपेक्षता को मौलिक अधिकारों

के रूप में सम्मिलित करता है, बल्कि उसे राज्य की नीति और व्यवहार के लिए एक दिशानिर्देशक मूल्य भी बनाता है। न्यायपालिका ने समय–समय पर इन मूल्यों की पुष्टि की है। परंतु संवैधानिक प्रावधानों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें किस प्रकार लागू किया जाता है और समाज उन्हें कितनी गंभीरता से आत्मसात करता है।

धर्मनिरपेक्षता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य– भारतीय समाज की संरचना अत्यंत विविधतापूर्ण है यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन जैसे विभिन्न धार्मिक समुदाय न केवल सह–अस्तित्व में हैं, बल्कि उन्होंने भारत की संस्कृति, परंपराओं, और सामाजिक जीवन को भी सामूहिक रूप से समृद्ध किया है। भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित धर्मनिरपेक्षता का सही मूल्यांकन तब तक अधूरा है, जब तक उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण न किया जाए। धर्मनिरपेक्षता का सामाजिक अर्थ यह है कि समाज के भीतर सभी धर्मों और धार्मिक समुदायों को समान दर्जा, समान अवसर, और समान सम्मान प्राप्त हो। यह सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक मूल्यों, परंपराओं, उत्सवों, सामाजिक सहभागिता, विवाह, और जीवन शैली के विभिन्न पक्षों में प्रतिबिंबित होना चाहिए। भारत में ऐतिहासिक रूप से अनेक धर्मों का सह–अस्तित्व रहा है। गाँवों में लोग एक–दूसरे के त्योहारों में भाग लेते हैं, एक–दूसरे की मान्यताओं का सम्मान करते हैं, और धार्मिक स्थानों को साझा करते हैं। उदाहरणस्वरूप– हिन्दू–मुस्लिम साझा संस्कृति, मुशायरे, कव्वालियाँ, मेलों और उर्स जैसे आयोजनों में भागीदारी। भक्ति और सूफी आंदोलनों में धार्मिक समरसता का संदेश। अनेक परिवारों में सांस्कृतिक रूप से मिली–जुली परंपराएँ देखी जाती हैं। यह दर्शाता है कि धर्मनिरपेक्षता केवल संवैधानिक आदर्श नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार का हिस्सा भी रही है। भारत में धार्मिक सहिष्णुता की परंपरा बहुत प्राचीन है। यह सहिष्णुता केवल सहनशीलता नहीं बल्कि सकारात्मक स्वीकृति और सम्मान की भावना पर आधारित है। यह विचार विभिन्न धार्मिक संतों, कवियों और विचारकों में स्पष्ट दिखाई देता है। कबीर ने धर्म के नाम पर भेदभाव का विरोध किया। गुरु नानक ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की वकालत की। गांधी जी का सर्वधर्म समभाव इसी परंपरा का आधुनिकीकरण था।

इस सामाजिक सहिष्णुता ने ही भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध और विविधता में एकता वाला राष्ट्र बनाया। हालाँकि आदर्श रूप में भारतीय समाज धर्मनिरपेक्ष प्रतीत होता है, परंतु व्यवहारिक धरातल पर अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। जैसे– अल्पसंख्यक समुदायों के साथ आवास, शिक्षा, और रोज़गार में भेदभाव। मंदिरों और मस्जिदों में प्रवेश या सम्मानजनक व्यवहार को लेकर सामाजिक असमानताएँ। सांप्रदायिक तनाव और हिंसा अर्थात सांप्रदायिक दंगों में सामाजिक तानेबाने को नुकसान। पड़ोसियों के बीच विश्वास की कमी और अलगाव की भावना। सामाजिक ध्रुवीकरण अर्थात सोशल मीडिया के माध्यम से नफरत और धार्मिक विद्वेष का प्रचार। धार्मिक पहचान को सामाजिक श्रेष्ठता/हीनता से जोड़ना। भारतीय सामाजिक संरचना में धर्म और जाति एक–दूसरे से अत्यंत गहराई से जुड़े हुए हैं। कई बार धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा जातिगत पूर्वाग्रहों से प्रभावित होती है जैसे दलितों के मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध, जाति आधारित धार्मिक रीतियों में असमानता, धर्मांतरण और पुनः धर्म में प्रवेश की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि केवल धर्मों के मध्य सहिष्णुता ही पर्याप्त नहीं, बल्कि धर्म के भीतर जातिगत असमानताओं से भी निपटना होगा। धर्मनिरपेक्षता को सामाजिक धरातल पर प्रभावी बनाने में सामाजिक संगठनों, एनजीओ, धार्मिक नेतृत्व, और नागरिक समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे अंतर–धार्मिक संवाद का आयोजन, युवा वर्ग में समरसता की भावना का विकास, विविधता को सम्मान देने वाली संस्कृति का प्रचार, अनेक संस्थाएँ, जैसे हम भारत के लोग, अनहद, PUCL, आदि ने सामुदायिक सौहार्द के लिए सराहनीय प्रयास किए हैं। भारत में धार्मिक त्योहारों का सांस्कृतिक रूप से सामूहिक उत्सवों में रूपांतरण

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

हुआ है। ईद, दिवाली, क्रिसमस, बैसाखी जैसे पर्व विभिन्न धर्मों लोग मिलकर मनाते हैं। विद्यालयों, संस्थानों, और सार्वजनिक स्थलों पर धर्म–निरपेक्ष उत्सव देखने को मिलते हैं। ये परंपराएँ सामाजिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता को जीवंत बनाए रखती हैं।

भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता केवल एक संवैधानिक मूल्य नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक आदर्श भी रही है। यद्यपि विभिन्न सामाजिक स्तरों पर धार्मिक सहिष्णुता की परंपरा मजबूत रही है, परंतु आज भी पूर्वाग्रह, असमानता, और सांप्रदायिक तनाव जैसी चुनौतियाँ विद्यमान हैं। ऐसे में आवश्यक है कि नागरिक समाज, धार्मिक नेता, शिक्षण संस्थान और मीडिया मिलकर धर्मनिरपेक्षता को व्यवहारिक जीवन का अभिन्न अंग बनाएं। जब तक समाज में सभी धर्मों और उनके अनुयायियों को समान आदर और अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, तब तक धर्मनिरपेक्षता का संपूर्ण उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता।

धर्मनिरपेक्षता और भारतीय राजनीति– भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता एक केंद्रीय अवधारणा रही है, जो राष्ट्र की विविध धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषाई संरचना को समाहित करने का प्रयास करती है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्वयं को परिभाषित किया, जिसमें राज्य किसी विशेष धर्म को बढ़ावा नहीं देगा और सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता तथा समानता की गारंटी दी जाएगी। परंतु व्यावहारिक राजनीति में धर्मनिरपेक्षता एक जटिल और विवादास्पद विषय बन गया है, जिसमें विभिन्न दलों, संगठनों और नेताओं ने इसे अपने–अपने राजनीतिक हितों के अनुसार व्याख्यायित किया है। भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ केवल धार्मिक सहिष्णुता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राज्य और धर्म के बीच दूरी बनाए रखने का दायित्व भी समेटे हुए है। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की व्याख्या की गई है। इसके साथ–साथ 42वें संविधान संशोधन (1976) के माध्यम से श्धर्मनिरपेक्षश शब्द को संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि भारत राज्य के रूप में किसी धर्म को न तो प्रोत्साहित करेगा और न ही उससे भेदभाव करेगा। चुनावी राजनीति में धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप कई बार बदलता रहा है। कुछ राजनीतिक दलों ने इसे अपने वैचारिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया, जबकि कुछ अन्य ने इसे तुष्टिकरण या बहुसंख्यकवाद के चश्मे से देखा। उदाहरणस्वरूप– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतंत्रता संग्राम से ही धर्मनिरपेक्षता को अपनी राजनीति का आधार बनाया। परंतु समय–समय पर उस पर अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण का आरोप भी लगता रहा। भारतीय जनता पार्टी धर्मनिरपेक्षता की परंपरागत व्याख्या से हटकर 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की अवधारणा को प्राथमिकता देती है, जिसे कई बार बहुसंख्यकवाद का समर्थन कहा गया है। समाजवादी और क्षेत्रीय दलों ने धर्मनिरपेक्षता को सामाजिक न्याय के मुद्दों से जोड़कर देखा, लेकिन उनके व्यावहारिक कदम अक्सर राजनीतिक समीकरणों पर आधारित रहे। भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता की सबसे बड़ी चुनौती सांप्रदायिकता रही है। सांप्रदायिक तनाव, दंगे, और धार्मिक ध्रुवीकरण जैसे मुद्दों ने बार–बार धर्मनिरपेक्ष राज्य की भावना को आघात पहुँचाया है। मालेगांव, गोधरा, मुज़फ्फरनगर, और दिल्ली जैसे दंगों में राजनीतिक भूमिका स्पष्ट रूप से देखी गई है। राजनीतिक दल कई बार धार्मिक भावनाओं को भड़काकर चुनावी लाभ उठाने की कोशिश करते हैं, जिससे धर्मनिरपेक्षता कमजोर होती है। वहीं, कुछ दल सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ एकजुट होकर धर्मनिरपेक्षता की रक्षा का दावा करते हैं, लेकिन व्यावहारिक राजनीति में यह अक्सर मतदाता वर्ग विशेष को लुभाने की रणनीति मात्र रह जाती है। भारतीय न्यायपालिका ने कई ऐतिहासिक निर्णयों में धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या की है। सुप्रीम कोर्ट ने एस.आर. बोम्मई बनाम भारत सरकार (1994) के मामले में कहा कि धर्मनिरपेक्षता संविधान की आधारभूत संरचना का हिस्सा है और इसका उल्लंघन असंवैधानिक है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा, सार्वजनिक स्थलों पर धार्मिक गतिविधियों, और धर्म आधारित आरक्षण जैसे मुद्दों पर भी न्यायपालिका ने संतुलित दृष्टिकोण अपनाया है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

चुनावों में धार्मिक आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण धर्मनिरपेक्षता की भावना को कमजोर करता है। किसी एक समुदाय विशेष के प्रति राजनीतिक लाभ के उद्देश्य से की गई नीतियाँ धर्मनिरपेक्षता की आत्मा के विपरीत मानी जाती हैं। धर्म आधारित पहचान की राजनीति अर्थात जाति, धर्म और समुदाय आधारित राजनीति समाज को विभाजित करती है। अल्पसंख्यकों का असुरक्षा भाव अर्थात जब राजनीतिक माहौल धार्मिक रूप से उग्र हो, तब अल्पसंख्यक वर्ग के भीतर असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। आज की राजनीतिक परिस्थितियों में धर्मनिरपेक्षता को केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि व्यवहारिक और समावेशी दृष्टिकोण के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए आवश्यक है– राजनीति में धार्मिक आधारों से परे विकास और समानता आधारित मुद्दों को प्राथमिकता दी जाए। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की समझ विकसित की जाए। मीडिया और राजनीतिक नेताओं द्वारा धार्मिक सद्भाव के पक्ष में संवाद को बढ़ावा दिया जाए। भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक पक्ष कई विरोधाभासों और चुनौतियों से घिरा है। यह आवश्यक है कि राज्य और समाज मिलकर एक समावेशी, न्यायपूर्ण और संवेदनशील राजनीतिक संस्कृति विकसित करें, जहाँ धर्मनिरपेक्षता केवल संविधान का शब्द न होकर सामाजिक आचरण का हिस्सा बने।

न्यायपालिका और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की व्याख्या– भारत में धर्मनिरपेक्षता केवल एक वैधानिक या राजनीतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह भारतीय संविधान के मूलभूत ढांचे का अभिन्न अंग है। न्यायपालिका, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय, समय–समय पर अपने निर्णयों के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या करती रही है और इसे भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में स्थापित करती रही है। भारतीय न्यायपालिका, विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय, धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट कर चुकी है कि यह केवल सभी धर्मों के प्रति राज्य की तटस्थता नहीं है, बल्कि यह समानता, सहिष्णुता और धार्मिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की प्रणाली है। न्यायपालिका ने यह रेखांकित किया है कि राज्य न तो किसी धर्म को मान्यता दे सकता है, और न ही किसी विशेष धर्म को बढ़ावा दे सकता है। धर्मनिरपेक्षता का अभिप्राय है कि राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जब तक कि वे सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता या स्वास्थ्य के विरुद्ध न हों।

प्रमुख निर्णय– न्यायपालिका ने समय–समय पर अनेक ऐतिहासिक फैसलों के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को बल दिया है–

(क) केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)– इस ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषित किया कि संविधान का 'मूल ढांचा' परिवर्तनीय नहीं है, और धर्मनिरपेक्षता इस मूल ढांचे का एक अभिन्न अंग है। यह निर्णय धर्मनिरपेक्षता की संवैधानिक स्थिति को मजबूत करता है।

(ख) सरला मुद्गल बनाम भारत संघ (1995)– इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बहुविवाह जैसे मुद्दे पर टिप्पणी करते हुए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल दिया और धर्म के नाम पर भेदभाव को अस्वीकार किया।

(ग) एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)– इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि कोई भी राज्य सरकार यदि धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है तो उसे भंग किया जा सकता है। इसने यह स्थापित किया कि धर्मनिरपेक्षता संविधान की आधारभूत विशेषता है और किसी भी राज्य की नीतियों में इसका उल्लंघन अस्वीकार्य है।

भारतीय न्यायपालिका ने यह प्रयास किया है कि धार्मिक स्वतंत्रता और कानून का संतुलन बना रहे। उदाहरण के लिए, अदालतों ने मंदिरों में दलितों के प्रवेश, मुस्लिम महिलाओं के अधिकार, या धार्मिक स्थलों

पर सार्वजनिक व्यवस्था से जुड़ी समस्याओं में हस्तक्षेप कर धर्मनिरपेक्षता के व्यावहारिक पक्ष को सुदृढ़ किया है। वर्तमान समय में न्यायपालिका ने लव जिहाद, गाय संरक्षण, धार्मिक जलसे आदि से जुड़े मामलों में विवेकपूर्ण ढंग से हस्तक्षेप कर यह सुनिश्चित किया है कि किसी भी धर्म के अनुयायी को अन्य धर्मों के प्रति वैमनस्य का कारण नहीं बनना चाहिए। न्यायपालिका की यह भूमिका भारत जैसे बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक देश में सामाजिक सौहार्द बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। न्यायपालिका ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप में की है। अदालतों के निर्णय यह सुनिश्चित करते हैं कि संविधान में उल्लिखित धार्मिक स्वतंत्रता और समानता के अधिकार, राज्य की निष्पक्षता, और नागरिकों की गरिमा अक्षुण्ण बनी रहे। न्यायपालिका भारतीय धर्मनिरपेक्षता की प्रहरी के रूप में कार्य कर रही है और लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बना रही है।

अल्पसंख्यकों के अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता– भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश में अल्पसंख्यकों के अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। धर्मनिरपेक्षता का मूल उद्देश्य सभी नागरिकों को समान अधिकार देना और धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न करना है। भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों की धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने के लिए अनेक प्रावधान किए गए हैं, जो भारत को एक समावेशी और न्यायपूर्ण राष्ट्र बनाने की दिशा में सहायक हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 से 28 तक नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता है। यह प्रावधान न केवल बहुसंख्यकों बल्कि अल्पसंख्यकों को भी अपनी धार्मिक आस्थाओं के अनुसार जीवन जीने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 26 धार्मिक संस्थाओं को धार्मिक, धार्मिक–प्रचारात्मक, और दान–पुण्य कार्यों को संचालित करने की स्वतंत्रता देता है। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 29 और 30 अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 29 के अनुसार किसी भी नागरिक को केवल भाषा, लिपि या संस्कृति के आधार पर शिक्षण संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपने शिक्षण संस्थान स्थापित करने और संचालित करने की स्वतंत्रता देता है। इन प्रावधानों का उद्देश्य है कि अल्पसंख्यक समूह न केवल अपनी धार्मिक पहचान बनाए रखें, बल्कि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से भी सशक्त हों। इस प्रकार भारत की धर्मनिरपेक्षता केवल सैद्धांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप से भी क्रियाशील है।

भारत में प्रमुख धार्मिक अल्पसंख्यकों में मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन और पारसी समुदाय शामिल हैं। इन समुदायों की धार्मिक पहचान, पूजा पद्धति, और सांस्कृतिक विशेषताएं बहुसंख्यक हिंदू समाज से भिन्न हैं, परंतु भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्ष भावना के तहत इन्हें पूर्ण संरक्षण प्राप्त है। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग जैसे संस्थान भी कार्यरत हैं। हालाँकि, व्यवहारिक स्तर पर कई बार इन अधिकारों के क्रियान्वयन में कठिनाइयाँ आती हैं। सामाजिक भेदभाव, सांप्रदायिक तनाव, और राजनैतिक ध्रुवीकरण जैसे तत्व धार्मिक स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं। कई बार धार्मिक स्थलों पर हमले, जबरन धर्मांतरण के आरोप, या गो–हत्या जैसे मुद्दे अल्पसंख्यकों को असुरक्षित महसूस कराते हैं। भारतीय न्यायपालिका ने विभिन्न मामलों में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को बल प्रदान किया है। केशवानंद भारती बनाम राज्य केरल (1973), सैयदना ताहेर सैफुद्दीन साहब बनाम राज्य बॉम्बे (1962), टीएमए पई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) जैसे मामलों में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यकों को उनकी पहचान और संस्थाओं के संचालन का पूर्ण अधिकार है, और राज्य इसमें अनुचित हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वर्तमान समय में धार्मिक ध्रुवीकरण, सांप्रदायिक हिंसा, और नफरत फैलाने वाले बयानों से अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर प्रश्नचिह्न लगता है। सोशल मीडिया के माध्यम से

फैलती अफवाहें, फेक न्यूज़, और सांप्रदायिक एजेंडा अल्पसंख्यक समुदायों की सुरक्षा और धार्मिक स्वतंत्रता को चुनौती देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों द्वारा बनाए गए धर्मांतरण विरोधी कानूनों की व्याख्या भी कई बार विवाद का विषय बनती है, जिससे धार्मिक स्वतंत्रता का हनन हो सकता है।

सुधार के सुझाव– समान नागरिक संहिता पर विचार करते समय धार्मिक स्वतंत्रता और विविधता का सम्मान किया जाना चाहिए। धार्मिक समुदायों में संवाद और सहभागिता को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। अल्पसंख्यक आयोगों को अधिक अधिकार और स्वायत्तता दी जाए ताकि वे प्रभावी रूप से कार्य कर सकें। शिक्षा और मीडिया के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता और विविधता की समझ को गहरा किया जाए। राजनीतिक दलों को अल्पसंख्यकों के मुद्दों पर सांप्रदायिक नहीं, बल्कि संवैधानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। भारत में धर्मनिरपेक्षता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि क्या अल्पसंख्यकों को धार्मिक स्वतंत्रता, सामाजिक सुरक्षा और समान नागरिक अधिकार मिलते हैं। केवल संविधान में अधिकारों का उल्लेख पर्याप्त नहीं, बल्कि उनके व्यावहारिक क्रियान्वयन की आवश्यकता है। एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा ईमानदारी से की जाए और धर्मनिरपेक्षता को केवल नारे के रूप में नहीं, बल्कि व्यवहार में भी उतारा जाए।

धर्मनिरपेक्षता और मीडिया की भूमिका– भारत में मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मानी जाती है, जिसका मुख्य कार्य सूचना का निष्पक्ष और तथ्यपरक प्रसारण, जनमत निर्माण, सामाजिक समरसता को प्रोत्साहित करना तथा राज्य व समाज के बीच संवाद को सुदृढ़ बनाना है। धर्मनिरपेक्षता जैसे संवेदनशील विषय में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह न केवल धार्मिक विविधता को चित्रित करता है, बल्कि धर्म आधारित मुद्दों पर जनचेतना भी उत्पन्न करता है। धर्मनिरपेक्ष भारत में मीडिया तब अपनी भूमिका सार्थक रूप में निभाता है जब वह सभी धार्मिक समुदायों को समान मंच प्रदान करता है, धार्मिक पूर्वग्रहों से मुक्त रहकर संवाद को बढ़ावा देता है, और सामाजिक सौहार्द की भावना का संचार करता है। स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आधुनिक भारत के निर्माण तक कई पत्रकारों और संपादकों ने धार्मिक एकता और सहिष्णुता को बढ़ावा देने में उल्लेखनीय योगदान दिया। हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि कुछ मीडिया संस्थान, विशेष रूप से टी.वी. चौनल्स और डिजिटल मीडिया, टी.आर.पी. और राजनीतिक झुकाव के कारण धार्मिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। इससे धार्मिक अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना पनपती है और धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने को क्षति पहुँचती है। कई बार सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म फेक न्यूज़ और हेट स्पीच के माध्यम बन जाते हैं, जो सांप्रदायिक तनाव को बढ़ाते हैं। धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के लिए मीडिया को निष्पक्ष, संवेदनशील और तथ्य–आधारित रिपोर्टिंग अपनानी चाहिए। पत्रकारों को धार्मिक मुद्दों पर रिपोर्टिंग करते समय संविधान प्रदत्त धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का सम्मान करना चाहिए और ऐसे शब्दों, प्रतीकों अथवा प्रस्तुतिकरण से बचना चाहिए जो किसी समुदाय को भड़काने या नीचा दिखाने का कार्य करे। भारत में मुख्यधारा की मीडिया में धार्मिक और सामाजिक विविधता का उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। इससे एकरूपता की पत्रकारिता पनपती है और बहुसंख्यकवादी दृष्टिकोण प्रबल होता है। अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर की समस्याएँ, चिंताएँ और उपलब्धियाँ अक्सर हाशिए पर चली जाती हैं। एक धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण हेतु यह आवश्यक है कि मीडिया संस्थानों में विविधताओं का प्रतिनिधित्व बढ़े। हालाँकि चुनौतियाँ अनेक हैं, फिर भी कई मीडिया संस्थानों ने विविधताओं को सम्मान देने वाली पत्रकारिता को बढ़ावा दिया है। कुछ समाचार पत्र और चौनल्स धार्मिक सौहार्द्र को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रमों, डॉक्यूमेंट्रीज़ और फीचर लेखों के माध्यम से जनमत को जागरूक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। साथ ही मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों में धर्मनिरपेक्षता और बहुलतावाद को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

रहा है। धर्मनिरपेक्ष भारत में मीडिया की भूमिका केवल सूचना देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज में विविधता के सम्मान, पारस्परिक सहिष्णुता, और सांप्रदायिक सौहार्द को बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाता है। जब मीडिया निष्पक्षता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी के साथ कार्य करता है, तब वह धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक आदर्शों को सशक्त बनाता है; वहीं जब वह पूर्वग्रह से ग्रस्त होकर कार्य करता है, तब वह सामाजिक ताने–बाने को नुकसान पहुँचाता है। अतः आज के परिवेश में मीडिया की भूमिका को और अधिक सजग, जिम्मेदार और संवेदनशील बनाए जाने की आवश्यकता है।

सांप्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता के मध्य संघर्ष– भारत जैसे बहुधार्मिक समाज में धर्मनिरपेक्षता एक संवैधानिक आदर्श है, जबकि सांप्रदायिकता एक सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक चुनौती। ये दोनों अवधारणाएँ एक–दूसरे के विपरीत ध्रुवों पर खड़ी हैं जहाँ धर्मनिरपेक्षता सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टिकोण अपनाने की बात करती है, वहीं सांप्रदायिकता धर्म के आधार पर भेदभाव, वैमनस्य और हिंसा को बढ़ावा देती है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की, परंतु व्यवहारिक धरातल पर सांप्रदायिकता बार–बार इस आदर्श को चुनौती देती रही है। सांप्रदायिकता वह विचारधारा है जो धर्म को राजनीतिक पहचान और संघर्ष का माध्यम बनाती है। यह सोच मानती है कि एक धर्म के अनुयायी अन्य धर्मों के विरोधी हैं, और उनके हित एक–दूसरे से टकराते हैं। सांप्रदायिकता के कई रूप हो सकते हैं जैसे– धार्मिक पूर्वाग्रह और द्वेष, धार्मिक पहचान आधारित राजनीति, सांप्रदायिक हिंसा और दंगे, धार्मिक ध्रुवीकरण द्वारा चुनावी लाभ। भारत में धर्मनिरपेक्षता संविधान द्वारा स्थापित एक मूलभूत मूल्य है, जबकि सांप्रदायिकता संविधान के इस मूल ढांचे को विघटित करने का प्रयास करती है। इस संघर्ष के केंद्र में राज्य और धर्म का संबंध, धार्मिक स्वतंत्रता बनाम धार्मिक वर्चस्व, तथा नागरिक अधिकारों बनाम समूह हितों की टकराहट है।

मुख्य संघर्ष बिंदु–

धर्मनिरपेक्षता सांप्रदायिकता
सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टिकोण एक धर्म को श्रेष्ठ और अन्य को अधीन मानना
नागरिकता आधारित अधिकारधार्मिक पहचान आधारित विशेषाधिकार
एकता में विविधता की मान्यता धर्म के आधार पर ध्रुवीकरण
लोकतंत्र और समानता पर आधारित बहुसंख्यकवाद या अल्पसंख्यक तुष्टिकरण पर आधारित

ब्रिटिश काल में फूट डालो और राज करो नीति ने हिन्दू–मुस्लिम विभाजन को संस्थागत रूप दिया। 1909 के मिंटो–मॉर्ले सुधार और 1932 का कम्युनल अवार्ड धर्म के आधार पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व को वैध बनाते हैं। 1947 का विभाजन सांप्रदायिकता की चरम परिणति थी, जिसमें लाखों लोगों की जान गई और धार्मिक हिंसा की नींव पड़ी। स्वतंत्र भारत में नरसिंहपुर (1969), मेरठ (1987), मुम्बई (1992), गुजरात (2002), दिल्ली (2020) जैसे अनेक दंगे धर्मनिरपेक्षता के लिए गंभीर चुनौती बने। धार्मिक पहचान की राजनीतिरू चुनावों में धर्म आधारित भाषण, पोस्टर, और ध्रुवीकरण। फेक न्यूज़ और सोशल मीडिया, अफवाहें और झूठी खबरें सांप्रदायिक तनाव को भड़काती हैं। कुछ कट्टर संगठनों को राजनीतिक समर्थन सांप्रदायिक एजेंडा को बढ़ावा देता है। शिक्षा और पाठ्यक्रम में पक्षपात, इतिहास और सामाजिक विज्ञान की विषय–वस्तु में धार्मिक असंतुलन। न्यायिक प्रक्रिया में विलंब, सांप्रदायिक दंगों में दोषियों को सजा नहीं मिलना असंतोष को जन्म देता है।

धर्मनिरपेक्षता की प्रतिक्रियारू संघर्ष का समाधान कैसे?

(क) शिक्षा और सामाजिक चेतना– धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को प्रारंभिक शिक्षा से ही सिखाना, सहिष्णुता और विविधता को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

(ख) कठोर विधिक कार्यवाही– सांप्रदायिक हिंसा में लिप्त व्यक्तियों और संगठनों के विरुद्ध सख्त कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन।

(ग) मीडिया की जिम्मेदारी– सांप्रदायिकता फैलाने वाली झूठी खबरों को नकारना और धर्मनिरपेक्ष सामग्री को प्राथमिकता देना।

(घ) धार्मिक नेताओं की भूमिका– धार्मिक नेताओं द्वारा शांति, सहिष्णुता और पारस्परिक सम्मान का संदेश देना।

(ङ) राजनीतिक इच्छाशक्ति– राजनीतिक दलों को धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहिए, न कि धार्मिक ध्रुवीकरण से लाभ उठाना।

धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के मध्य संघर्ष केवल विचारधारा का नहीं, बल्कि भारत की सामाजिक एकता, संवैधानिक मूल्यों और लोकतांत्रिक भविष्य का प्रश्न है। यदि सांप्रदायिकता को नदबीमबामक छोड़ दिया जाए, तो यह लोकतंत्र को कमजोर कर सकती है। वहीं यदि धर्मनिरपेक्षता को व्यवहारिक रूप में आत्मसात किया जाए, तो यह विविधताओं के बीच सामंजस्य को बढ़ावा दे सकती है। भारत को एक सशक्त, समावेशी और न्यायपूर्ण राष्ट्र बनाने के लिए आवश्यक है कि धर्मनिरपेक्षता को केवल वैधानिक आदर्श न मानकर सामाजिक आचरण का अनिवार्य तत्व बनाया जाए कृ और सांप्रदायिकता के हर रूप का लोकतांत्रिक ढंग से प्रतिकार किया जाए।

वर्तमान समय में धर्मनिरपेक्षता की चुनौतियाँ– जून 2024 से जून 2025 के बीच APCR (Association for Protection of Civil Rights) ने 947 नफरत अपराध एवं भाषण की घटनाओं का आंकड़ा दर्ज किया, जिनमें 602 अपराध और 345 नफरत भाषण शामिल हैं। इनमें अधिकांश पीड़ित मुस्लिम और ईसाई समुदायों के थे, 25 मुसलमानों की हत्या हुई। नियमित रूप से प्रति माह 80 जैसी गैरकानूनी घटनाएं होती रहीं, जिनमें कई भाजपा-संबद्ध नेताओं द्वारा विवादास्पद बयानबाज़ी भी संलग्न रही। यह दर्शाता है कि धार्मिक आधार पर हिंसा और उत्पीड़न एक चिंताजनक प्रवृत्ति बन चुकी है ।

सांप्रदायिक हिंसा का हालिया दृश्य–

• नागपुर (17 मार्च 2025)– विषय था मुस्लिम शासक औरंगज़ेब की मजार की प्रतिमा हटाने की मांग। वाम हिंदू संगठनों ने विरोध आंदोलनों के दौरान मपिहल जलाकर माहौल को उग्र किया, जिसके परिणामस्वरूप 30 से अधिक लोग घायल हुए और एक व्यक्ति की मौत हुई ।

• समभल, यूपी (24 नवंबर 2024)– ASI द्वारा मस्जिद सर्वे की वजू-खाना की खुदाई को लेकर झूठे अफवाहों से हिंसा भड़क उठी। इस घटना में 5 की मृत्य और कई घायल हुए

• सतारा (2023)– एक सोशल मीडिया पोस्ट ने हिंदू–मुस्लिम समुदायों के बीच पत्थरबाजी और हिंसा को जन्म दिया ।

कई भाजपा-शासित राज्यों द्वारा लव जिहाज कानून, ंदजप–बवदअमतेपवद कानून, ''अल्पसंख्यक संस्थाओं पर नियंत्रण'', और सार्वजनिक भूमि कब्ज़ा अभियान जैसे कदम उठाए गए हैं। उदाहरणतः उत्तराखंड, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में ऐसे विधेयक प्रस्तावित या लागू किए गए हैं, जिन पर बहुसंख्यकवाद की राजनीति का आरोप लगता है। असम के मुख्यमंत्री ने संविधान की प्रस्तावना से secular शब्द हटाने की मांग की, जिसमें उन्होने इसे विदेशी विचारधारा बताया। सुप्रीम कोर्ट ने AIMIM को डीरजिस्टर न करने का निर्णय दिया, साथ–साथ व्यापक रूप से ष्कम्युनल अपील्सष जैसे मुद्दे उठाए जाने चाहिए। प्रभावशाली

राजनीतिक संस्थाओं को निशाना बनाना बजाए समग्र राजनीतिक संस्कृति को संचालित करने की सलाह दी। जब न्यायपालिका, मीडिया और चुनाव आयोग जैसे संस्थान निष्पक्षता से विमुख हो जाते हैं, तो धर्मनिरपेक्षता कमजोर होती है। 2025 में पारित Waqf Amendment Act ने मुस्लिम धार्मिक एन्डाउमेंट्स पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ाया, जिसमें गैर–मुस्लिमों को भी बोर्ड सदस्य बनाने का प्रावधान था। जबकि सरकार ने इसे पारदर्शिता से जोड़ा, आलोचक इसे अल्पसंख्यकों के अधिकारों का हनन मानते हैं। इसके खिलाफ देश भर में विरोध और प्रदर्शन हुए। धार्मिक और जातिगत आधार पर चुनावी राजनीति, आर्थिक असमानता, सामाजिक अलगाव व पिछड़ेपन के कारण धर्मनिरपेक्ष संरचना प्रभावित हो रही है। जातिगत–धर्म आधारित वोट बैंक राजनीति से सामाजिक ध्रुवीकरण बढ़ रहा है । शिक्षा संस्थानों में धर्मनिरपेक्षता की भावना कमजोर होती जा रही है, जैसे स्कूलों में ईद–पजिंत पर रोक आदि विवादित नीतियाँ । वर्तमान समय में भारत में धर्मनिरपेक्षता के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह नहीं है कि विचारधारा खंडित हो गई, बल्कि वह यह है कि संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करने वाली संस्थाएँ कमजोर होती जा रही हैं। न्यायपालिका, विधायिका, मीडिया और नागरिक समाज को मिलकर एक ऐसा तंत्र स्थापित करना होगा, जिसमें धर्मनिरपेक्षता केवल संवैधानिका मूल न होकर व्यवहार में भी माना जाए। तब तक असली धर्मनिरपेक्षता का संवैधानिक वह आदर्श मात्र ही रह जाएगा, जिसका लक्ष्य बेहतरीन समाज रह जाना है।

धर्मनिरपेक्षता के पुनरावलोकन की आवश्यकता– भारत में धर्मनिरपेक्षता केवल एक संवैधानिक आदर्श नहीं, बल्कि विविधतापूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना की आवश्यकता भी है। परंतु बीते कुछ दशकों में जिस प्रकार इसकी व्याख्या, कार्यान्वयन और व्यवहारिक पक्ष में विषमता देखी गई है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अब समय आ गया है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता की पुनर्रचना और पुनरावलोकन किया जाए। यह खंड धर्मनिरपेक्षता के वर्तमान स्वरूप की समीक्षा करता है और इसके नवोन्मेष की दिशा में संभावनाएं तलाशता है। राजनीतिक दुरुपयोग धर्मनिरपेक्षता को राजनीतिक दलों ने वोट बैंक की राजनीति के लिए एक साधन के रूप में उपयोग किया है, जिससे इसकी नैतिकता और उद्देश्य पर प्रश्नचिह्न खड़ा हुआ है। क्षेत्रीय और सांस्कृतिक अस्मिताओं की राजनीति ने धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को कमजोर किया है। तुष्टिकरण बनाम बहुसंख्यकवाद की बहस ने संतुलित दृष्टिकोण को हाशिए पर डाल दिया है। विद्यालयों और उच्च शिक्षा में धर्मनिरपेक्षता की सम्यक शिक्षा और अभ्यास का अभाव, नागरिक चेतना के विकास में बाधक बना है। भारत में केवल राज्य और धर्म के पृथक्करण को न देखकर सर्वधर्म समभाव की अवधारणा को केंद्र में रखा जाए, जो भारतीय परंपरा से भी मेल खाती है। सभी नागरिकों को उनके धर्म, जाति या समुदाय से ऊपर उठकर समान अधिकार और अवसर मिले, यह धर्मनिरपेक्षता का आधार होना चाहिए। संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता की मूल भावना की व्याख्या को स्पष्ट, व्यावहारिक और आधुनिक संदर्भों में उपयुक्त बनाने हेतु विधिक पुनरावलोकन। विद्यालयी पाठ्यक्रम में धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता और विविधता के मूल्य स्पष्ट रूप से सम्मिलित किए जाएं। मीडिया को सांप्रदायिकता या धार्मिक ध्रुवीकरण से बचाते हुए संतुलित और तथ्यपरक रिपोर्टिंग के लिए प्रेरित किया जाए। चुनावी आचार संहिता और राजनैतिक घोषणापत्रों में धर्म के नाम पर राजनीति को प्रतिबंधित करने वाले कठोर प्रावधान लागू किए जाएं। एनजीओ, धार्मिक संस्थाएं और बुद्धिजीवी समाज को धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के संवर्धन के लिए जागरूकता अभियानों में सक्रिय भागीदारी करनी चाहिए। धर्मनिरपेक्षता की पुनर्रचना केवल वैचारिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक परिवर्तन की मांग करती है। भारत जैसे बहुधर्मी, बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी राष्ट्र में धर्मनिरपेक्षता की पुनर्स्थापना एकमात्र

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 04, April 2025

विकल्प है जो लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता की गारंटी दे सकता है। इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, सामाजिक चेतना, और संवैधानिक प्रतिबद्धता का संगम आवश्यक है।

धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक मूल्य और भविष्य की दिशा– भारत में धर्मनिरपेक्षता न केवल एक संवैधानिक आदर्श है, बल्कि एक सांस्कृतिक और सामाजिक आवश्यकता भी है। विविधताओं से भरे इस देश में धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर सामाजिक संरचना इतनी जटिल है कि उसके समुचित संचालन के लिए एक समावेशी, निष्पक्ष और तटस्थ शासन व्यवस्था अनिवार्य है। धर्मनिरपेक्षता इस व्यवस्था की आधारशिला है, जो राज्य को किसी एक धर्म के पक्ष में झुकाव से रोकती है और सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता और समानता प्रदान करती है। इस शोधपत्र के विभिन्न अध्यायों में हमने देखा कि भारत में धर्मनिरपेक्षता की ऐतिहासिक जड़ें प्राचीन काल से ही रही हैं, चाहे वह सम्राट अशोक की नीतियाँ रही हों या अकबर की 'दीन–ए–इलाही' की अवधारणा। भारतीय संविधान ने इस आदर्श को और अधिक स्पष्टता से आत्मसात किया है, जहाँ न केवल राज्य की धार्मिक निरपेक्षता को परिभाषित किया गया, बल्कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों को भी संरक्षण प्रदान किया गया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से धर्मनिरपेक्षता सामाजिक समरसता का माध्यम बनती है, जबकि राजनीतिक दृष्टिकोण से यह विभिन्न धार्मिक समूहों को समान राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने का उपकरण बनती है। न्यायपालिका ने समय–समय पर अपने निर्णयों से धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या को गहराई प्रदान की है और इसे भारतीय लोकतंत्र की 'बेसिक स्ट्रक्चर' में शामिल किया है। हालांकि, व्यावहारिक धरातल पर अनेक समस्याएं भी सामने आती हैं, जैसे– धार्मिक ध्रुवीकरण, सांप्रदायिक राजनीति का प्रयोग, अल्पसंख्यकों की असुरक्षा, मीडिया का पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, और सार्वजनिक विमर्श में धार्मिक मुद्दों का दुरुपयोग। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता की परिकल्पना का पुनरावलोकन किया जाएकृन केवल वैधानिक और संस्थागत स्तर पर, बल्कि सामाजिक और शैक्षिक स्तर पर भी। शिक्षा प्रणाली में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का समावेश, नागरिक समाज की सक्रिय भागीदारी, और मीडिया की जिम्मेदारी, धर्मनिरपेक्षता को केवल एक संवैधानिक सिद्धांत से आगे ले जाकर उसे एक व्यवहार्य सामाजिक संस्कृति में परिवर्तित कर सकती है।

भारतीय लोकतंत्र में धर्मनिरपेक्षता एक अपरिहार्य मूल्य है, जो यदि अपने समावेशी स्वरूप में लागू की जाए तो न केवल सामाजिक स्थिरता बल्कि राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ कर सकती है। हमें न केवल इसे बनाए रखने की आवश्यकता है, बल्कि इसके आत्मसात और पुनर्परिभाषा की भी आवश्यकता है, ताकि यह समकालीन चुनौतियों से जूझ सके और भारत को एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और समरस समाज की दिशा में ले जा सके।

अनुशंसाएं (Recommendations)–

1. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को पाठ्यक्रम में समावेशित किया जाए।
2. राजनैतिक दलों को धर्म आधारित राजनीति से प्रतिबंधित किया जाए।
3. मीडिया को धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के प्रचार में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।
4. न्यायपालिका द्वारा 'Essential Practices Doctrine' को पुनर्परिभाषित किया जाए।
5. अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अपराधों पर त्वरित और कठोर कार्रवाई की जाए।
6. चुनाव आयोग द्वारा सांप्रदायिक प्रचार पर प्रतिबंध हो।
7. अंतर–धार्मिक संवाद और सहयोग को संस्थागत समर्थन दिया जाए।
8. सोशल मीडिया पर धार्मिक घृणा के विरुद्ध प्रभावी निगरानी तंत्र हो।
9. धार्मिक संस्थानों को पारदर्शी प्रशासनिक प्रणाली में लाया जाए।

10. नागरिक समाज को धर्मनिरपेक्षता के प्रचार–प्रसार में सशक्त बनाया जाए।

सन्दर्भ सूची–

1. भारतीय संविधान का निर्माण, ग्रान्विल ऑस्टिन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003 ISBN: 9780195648881
2. धर्मनिरपेक्षता, भारतीय अनुभव, राजा राम, ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007 ISBN: 9780195678819
3. सेक्युलरिज्म एंड इट्स क्रिटिक्स, राजीव भार्गव (संपादक), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998 ISBN: 9780195648379
4. इंडिया आफ्टर गांधी, रामचंद्र गुहा, पिकाडोर इंडिया, 2007 ISBN: 9780330396110
5. द आइडिया ऑफ इंडिया, सुनील खिलनानी, फेबर एंड फेबर, 1997, ISBN: 9780140262910
6. भारतीय राजनीति में धर्म, अशोक मेहता, रावत पब्लिकेशन्स, 2004 ISBN: 9788170338609
7. धर्म और राजनीति, एस.एन. बालगंगाधर, मनोहर पब्लिकेशन्स, 2001 ISBN: 9788173044026
8. धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का पुनर्परिभाषण, इन्द्रा घोष, प्रभात प्रकाशन, 2010 ISBN: 9788172342390
9. भारत में अल्पसंख्यक अधिकार, टी. के. ओमान, साउथ एशियन पब्लिकेशन्स, 2009 ISBN: 9789380032577
10. मीडिया, धर्म और राजनीति, योगेन्द्र यादव, संवाद प्रकाशन, 2012 ISBN: 9789381004245
11. द सेकुलर स्टेट एंड रिलिजन इन इंडिया, डोनाल्ड ई. स्मिथ, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1963 ISBN: 9780691030690
12. इंडियन सेक्युलरिज्म, निलय उपाध्याय, सेज पब्लिकेशन्स, 2015 ISBN: 9789351501233
13. भारतीय न्यायपालिका और धर्मनिरपेक्षता, डॉ. आर.एस. शर्मा, यूनिटी पब्लिकेशन, 2018 ISBN: 9789387121229
14. धर्म और आधुनिक भारत, डॉ. के.एल. शर्मा, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2005 ISBN: 9788125027697
15. धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता, शकील अख्तर, गंगा पब्लिकेशन्स, 2001 ISBN: 9788187027174
16. सांप्रदायिकता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, असगर अली इंजीनियर, हर्ष पब्लिकेशन्स, 2000 ISBN: 9788170997776
17. सेक्युलर इंडिया, बी.एल. फडनवीस, साउथ एशियन बुक्स, 1999 ISBN: 9788173042657
18. अल्पसंख्यक अधिकार और भारतीय संविधान, अली मोहम्मद, नई दुनिया पब्लिकेशन, 2011 ISBN: 9788189642870
19. भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा, एम.एन. श्रीनिवास, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, 2006 ISBN: 9788175330424
20. धर्मनिरपेक्षता और भारतीय संस्कृति, डॉ. वी.एन. मिश्रा, भारतीय विद्या संस्थान, 2014 ISBN: 9789383140064
21. राजनीति और धर्म एक तुलनात्मक अध्ययन, सुरेश चंद्र, मिशन पब्लिकेशन, 2010 ISBN: 9788190715642
22. भारतीय समाज और धर्मनिरपेक्षता, रमेश ठाकुर, वैदिक प्रकाशन, 2016 ISBN: 9789384536415
23. धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संस्करण, प्रो. अमनदीप सिंह, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी प्रेस, 2020 ISBN: 97893906591031